उत्तरआधुनिकता: उत्तरसंवाद

संपादक:

मुक्ता

उत्तरआधुनिकता : उत्तरसंवाद

संपादक
मुक्ता

आमुख

उत्तरआधुनिकता समय के निरन्तर प्रवाह में यन्त्रों के दबाव से उपजी घटना है। उत्तरआधुनिकता आर्थिक, सांस्कृतिक स्थिति है और पूँजीवाद का ही फैलाव है जिसके तहत पूँजीवाद गैर पण्यीय क्षेत्रों में भी जा पहुँचा है और हर वस्तु को पण्य में बदल रहा है। उत्तरआधुनिकता की कोई मुकम्मल परिभाषा सम्भव नहीं है क्योंकि वह स्वयं समग्रताविरोधी है। जॉन मैकगोवान मानते हैं कि, "उत्तरआधुनिकतावाद एक ऐसी फिसलनदार पदावली है कि हम उसे आसानी से स्थिर नहीं कर सकते, वह शिक्षा संस्थानों में तेजी से पनपती सिद्धांतिकी है या वह महानगरों, उपनगरों का स्थापत्य है या वह सलमान रश्दी या ग्रैबील गार्सिया मारकेस या एंजेल्स कार्टर के नए उपन्यासों के रूप में है।" उल्लेखनीय है कि हमारे देश में उसे 'हरिया हरकुलीज' के रूप में देखा जा रहा है।

ऐसा भी मत है कि सर्वाधिक चर्चित जाक दरीदा पर भारतीय दर्शन का प्रभाव है क्योंकि शून्य और नेति का प्रयोग इन्होंने बहुत किया है जो भारतीय शून्यतावादी नागार्जुन का चिन्तन है।

आधुनिकता का आधार मानववाद, तर्कनिष्ठता, बौद्धिकता तथा वैज्ञानिकता एवं सार्वभौमिकता है। उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद भी आधुनिकता की ही देन हैं। उत्तरआधुनिकता ने आधुनिकता की सीमाओं को पहचाना है। यह कहीं उसे काटती है, कहीं साझेदार है और कहीं आगे भी जा रही है। प्रसिद्ध उत्तरआधुनिकतावादी जाँ-फ्रांस्वा ल्योतार (1982) के अनुसार—"कोई कला कृति उसी समय आधुनिक हो सकती है जब वह पहले उत्तरआधुनिक हो। इस दृष्टि से देखें तो उत्तरआधुनिकता से तात्पर्य आधुनिकता का अन्त नहीं बल्कि आधुनिकता का आरम्भ है और आरम्भ की यह स्थिति निरन्तर बनी रहती है।"

उत्तरआधुनिकतावाद, आधुनिकतावाद को एक योजना के रूप में देखता, परखता है जहाँ अस्मिता के नाम पर अन्यों का दमन हुआ है। आधुनिकतावादी अस्मिता के निर्माण में 'अन्यों' का दमन स्वीकार नहीं करते। आज दलित और स्त्री अपनी अस्मिता और पहचान के ही प्रश्नों से जूझ रहे हैं। उत्तरआधुनिकता अस्मिता की

सम्भावनाओं को ही खारिज करती है अतः दोनों में बुनियादी अन्तर हो जाता है। दलित साहित्य के साथ भी यह तथ्य जुड़ा हुआ है। किन्तु इसके साथ ही स्त्री और दलित संघर्ष की कुछ कड़ियाँ उत्तरआधुनिकता से जुड़ती हैं जैसे स्थानीयता के प्रश्न उत्तरआधुनिकता में महत्त्वपूर्ण हैं जिनसे दलित विमर्श और स्त्री विमर्श को बल मिला है। उत्तरआधुनिकता किसी भी केन्द्र की अवधारणा के विरुद्ध है। यही बात स्त्री और दलित आन्दोलन में भी है क्योंकि वहाँ भी अभी तक पुरुष और सवर्ण ही केन्द्र में थे।

यदि अस्मिता और पहचान के प्रश्नों को दलित और स्त्री संघर्ष से निकाल दिया जाए तो यह शरीर के अन्दर से प्राण तत्त्व निकाल देने जैसी बात है।

एंगेल्स ने माना है कि "मातृसत्ता से पितृसत्तात्मक समाज का अवतरण वास्तव में औरत जाति की सबसे बड़ी ऐतिहासिक हार थी। वैदिक युग में याज्ञवल्क्य ने 'यह अतिप्रश्न है' कहकर गार्गी के प्रश्न को खारिज कर दिया था। लेकिन वास्तविकता यह है कि गार्गी के प्रश्नों का उत्तर याज्ञवल्क्य के लिए दुरूह था। नारी ऋषि आम्भृणी ने 'अहं राष्ट्री संगमनी' कहकर राष्ट्रीयता की भावना का प्रथम उद्घोष किया। वैदिक युग की स्वायत्त स्त्री का उत्तरोत्तर देह में रूपान्तरण होता गया। आज पूरे विश्व में स्त्री की स्थिति एक जैसी है। एशियाई देशों में ही नहीं अमेरिका और यूरोप के विकसित देशों में भी स्त्रियों का सामाजिक और पारिवारिक परिवेश हिंसा से आक्रान्त है। स्त्री का निजी संताप शब्दों में ढलकर समय के यथार्थ को अभिव्यक्त करता है। समकालीन स्त्री विमर्श में ऐसा समाज परिलक्षित हुआ है जो राष्ट्र, वर्ग, जाति, नस्ल आदि संकुचित सीमाओं के पार जाता है। जहाँ भी दमन है, आतंक है, संत्रास है और शोषण है स्त्री साहित्य विरोध में खड़ा है।

दलित साहित्य में कुछ विचारणीय मुद्दे उभरकर सामने आए हैं। जिस मनुष्य को साहित्य बेहतर मनुष्य बनाता है, भारत के सन्दर्भ में वह मनुष्य कौन है? साहित्य ने दलितों को कितना बेहतर मनुष्य बनाया है, उनको कितना शिक्षित और जागृत किया है? एक लम्बे समय से साहित्य के पठन-पाठन और लेखन पर एक छत्र काबिज रहा सवर्ण हिन्दू समाज कितना बेहतर बना कि वह वर्ण व्यवस्था, जाति-पाँति और अस्पृश्यता की भेदपूर्ण भावना से आज तक नहीं उठ सका है? दलित साहित्य के अस्तित्व में आने से पहले पत्र पत्रिकाएँ कितने दलित लेखकों को छापती थीं? दलित साहित्य में आज अन्याय के प्रति विद्रोह और अधिकार चेतना के स्वर की गूँज है।

देवेन्द्र इस्सर ने आधुनिकता बनाम उत्तरआधुनिकता को स्पष्ट किया है—"आधुनिकतावाद तथा उत्तरआधुनिकतावाद न केवल दो अलग-अलग ऐतिहासिक दौरों का प्रतिनिधित्व करते हैं बल्कि दो विभिन्न शैलियों, सांस्कृतिक एवं सौन्दर्यात्मक बोध तथा वैचारिक सम्वादों पर आधारित हैं। उत्तरआधुनिकतावाद आधुनिकता के टेक्नो-वैज्ञानिक रैखिक विकास, अनवरत प्रगति तथा इतिहास और सार्वभौमिकता तथा अमूर्तता के मुकाबले में इस बात पर बल देता है कि प्रायः लोगों का एक

समूह दूसरे समूहों से अपनी मूल संरचनाओं में अलग होता है। ये भिन्न संरचनाएँ ही उनकी पहचान बनाती हैं।" उनका मत है कि, "हम किसी पाठ को साहित्य क्यों मानते हैं? सारी बहस इस पर केन्द्रित होनी चाहिए और इसी से हम बचते चले आ रहे हैं। उत्तरआधुनिकतावादी इसका कोई उत्तर नहीं देते। बस शब्दजाल फैलाकर शब्दों को चित्रों में परिवर्तित होने या निशानों के निरन्तर गुम होने की प्रक्रिया कहकर मसले को टाल देते हैं। समय आ गया है कि हम इस बात पर एक बार फिर बहस करें कि साहित्य क्या है? और आखिर हम साहित्य क्यों पढ़ें?"

सुविख्यात आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'साहित्य क्यों पढ़ें?' इसे स्पष्ट किया है "यदि अपने भावों को समेटकर मनुष्य अपने हृदय को शेष सृष्टि से किनारे कर ले या स्वार्थ की पशुवृत्ति में ही लिप्त रहे तो उसकी मनुष्यता कहाँ रहेगी?... विश्वकाव्य की धारा में जो थोड़ी देर के लिए निमग्न न हुआ उसके जीवन को मरुस्थल की यात्रा समझना चाहिए...कविता ही हृदय को प्रकृत दशा में लाती है और जगत् के बीच क्रमशः उसका अधिकाधिक प्रसार करती हुई उसे मनुष्यत्व की उच्च भूमि पर ले जाती है।" (रस मीमांसा)

परिवार, संस्कार, इतिहास और साहित्य के रूप में एक गढ़ा हुआ परिवेश अनायास ही प्राप्त होता है। लेखक के अन्दर का सर्जक जागरूक होते ही स्वयं को बहुत असमंजस भरी स्थिति में पाता है, जो कुछ मिला है वह उससे सन्तुष्ट नहीं है। क्या उलीचना है, कैसी मूर्ति गढ़नी है, इन्हीं दुविधाओं में वह अतीत के पन्ने पलटता है। इस तरह साहित्य भी साहित्य का परिवेश बनता है। उपनिषद् में जो प्रार्थनाएँ हैं 'अमृतस्य देव धारणो भूयासम। शरीर मे विचर्षणम्। जिह्वा मे मधुमत्तमा या दमायन्तु ब्रह्मचारिणः'। (तैत्तिरीयोपनिषद्)। देवत्व को धारण करने वाले हम लोग अमृतत्व को प्राप्त करें। हमारा शरीर अनैतिक आचरण न करे। हमारी जिह्वा अत्यधिक मधुरता से युक्त हो। ब्रह्मविद्या के जानकार (ब्रह्मचारी) दयावान् हों। ये ही धारणा में परिवर्तित हुई। बाइबिल, कुरान एवं अन्य धर्म ग्रन्थों के साथ भी यही हुआ। विहंगम दृष्टि से देखा जाए तो जो कुछ रचा गया सभी साहित्य है। समाज स्वयं ही तय कर लेता है क्या ग्रहण करना है, क्या छोड़ना है। सनातनता इसीलिए है कि परिवर्तन है। सनातनता ही जीवन्तता है।

साहित्य का मुख्य सरोकार है मनुष्य का सामाजिक जगत, उस जगत के प्रति उसकी अनुकूलता और उसे बदलने की इच्छा। उपन्यास औद्योगिक समाज की प्रमुख विधा है। उसमें परिवार, राजनीति तथा शासन के साथ मनुष्य के सम्बन्धों के सामाजिक जगत के पुनः सृजन का ईमानदार प्रयास दिखाई देता है। साहित्य समाज का सतही प्रतिबिम्ब न प्रस्तुत करके लेखकीय आशय के रूप में मूल्यों को भी प्रतिबिम्बित करता है। प्रश्न यह उठता है कि साहित्य वस्तुतः किसका प्रतिबिम्ब है? यदि उपन्यास को युग का दर्पण माना जाए तो इस दर्पण के चित्रों के विकृत होने की सम्भावना से

इन्कार नहीं किया जा सकता। बड़ी कृतियाँ सीधे ही समाज और समाज के सरोकारों का वर्णन नहीं करती हैं। रचनाकार का आन्तरिक परिवेश भी होता है जहाँ विरोध, तनाव होते हैं उनसे वह संघर्ष करता चलता है। उसमें पनपने और तड़पने वाले अनेक मूल्यवान अनुभव अभिव्यक्ति प्राप्त नहीं कर पाते इसीलिए हर बड़ा रचनाकार अभी तक न लिखी गई कृति की प्रतीक्षा करता दिखाई देता है।

कृतियाँ लम्बे संधानों अनुभवों से गुजरकर एक सम्पूर्ण विशिष्ट जगत की रचना करती हैं। सामाजिक मूल्यों के प्रति सचेत होती हैं। सच तो यह है कि समाज का जागरूक पाठक इन कृतियों को अपने-अपने दर्पण में देखता है। उत्तरआधुनिक सन्दर्भों में लेखक के अन्त से पाठक के केन्द्र में आने की बात शुरू होती है। लेखक जो लिखता है उसका निर्णय स्वयं नहीं ले सकता। लेखक की मृत्यु का अर्थ यहीं से शुरू होता है। कृति का निर्धारण उस काल में लिखे जा रहे अन्य पाठों से जुड़कर होगा। पाठक की समझ, भाषा के अर्थ की परम्परा ही कृति का निर्धारण करेगी।

उत्तरआधुनिकता में मृत्यु या अन्तवाद की घोषणाओं को चिन्तनपरक विमर्श के अनुसार समझने, परखने की आवश्यकता है। मनोहर श्याम जोशी का मानना है कि, "उत्तरआधुनिकता का सारा सूत्र यह है कि व्यक्ति ही केन्द्र में है। कोई भगवान, कोई समाज उससे बड़ी कोई सत्ता नहीं है और यह कि हमेशा कुछ नया होना चाहिए। यह सब उसकी आधारभूत साधनाएँ हैं। उसकी दूसरी दृष्टि विखण्डन है, तोड़ के देखेगी जोड़ के नहीं देखेगी। बोर्खेज़ का कहना था कि हम उस परम्परा में हेरेटिक हैं। हम तो लिख ही नहीं रहे हैं, रचनात्मक स्तर पर हम सब नकार रहे हैं। बोर्खेज़ की बात इसलिए कर रहे हैं कि वे उसके गॉडफादर हैं। उनका तर्क यह है कि हमने जो द्वन्द्व तोड़ दिए हैं उसका नया तेवर है, जो रूढ़ि तोड़ रहे हैं वह स्वयं एक रूढ़ि है।"

आलोचना के सन्दर्भ में गिरधर राठी का मत है "असल समस्या हमारी आलोचना की है, हमारे विमर्श की है, चिन्तन की है जो उसे अपने परम्परागत उपकरणों से नहीं पकड़ पा रहा है, अतः उसे उत्तरआधुनिकता के उपकरण चाहे-अनचाहे स्वीकार करने ही होंगे। उदाहरण के लिए सत्ता या शक्ति का जो विमर्श आज से पच्चीस-तीस वर्ष पूर्व था, उसको फूको वगैरह ने कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया है। वह सारी दरारें दिखा दी हैं जिनको मूँदकर हम अब तक मानववादी जनवादी, फासीवादी, आदर्शवादी, मार्क्सवादी इत्यादि व्याख्याएँ करके बौद्धिक रूप से सन्तुष्ट हो लेते थे कि हमने सत्ता के स्वरूप को, उसके चरित्र को समझ लिया है। उत्तरआधुनिकता के जो नए उपकरण हैं, वे हमें इस नए बदलते हुए अपरिभाषेय यथार्थ को थोड़ा बहुत समझने में मदद करते हैं।"

देवेन्द्र इस्सर के अनुसार—"साहित्य में संरचनावाद, उत्तर संरचनावाद, नव इतिहासवाद, सांस्कृतिक मार्क्सवाद, नारीवाद तथा दलितवाद और पाठक-केन्द्रित आलोचना बहस का विषय बन गए हैं। इस प्रकार के पाठ के अपने तकाजे हैं।

प्रश्न यह है कि क्या पाठ की ऐसी विवेचना पूर्वाग्रहों, प्राथमिकताओं तथा समुदाय विशेष के हितों तथा रुझानों को ही प्रदर्शित नहीं करेगी? और फिर यह प्रश्न भी है कि क्या यह आलोचना पद्धति भी पश्चिम केन्द्रित नहीं है? क्या पश्चिम के सैद्धान्तिक मॉडल से हम अपने क्लासिकी तथा समकालीन साहित्य की समीक्षा कर सकते हैं? क्या साहित्य का नया ग्लोब मॉडल स्थापित हो रहा है? क्या विकेन्द्रीकरण के बजाए नए प्रकार का 'समग्रतावाद' सुदृढ़ नहीं हो रहा जो अन्ततः बहुलतावाद को ही निगल जाएगा? क्या 'पॉलिटिकल करक्ट' एकांगी उग्रवाद नहीं? क्या 'देसीवाद' अथवा 'थर्ड वर्ल्डिज्म' विचारों के स्वतन्त्र प्रवाह और आदान-प्रदान को रोक कर संकुचित तथा संकीर्ण मानसिकता को जन्म नहीं देगा?''

(उत्तरआधुनिकता, साहित्य और संस्कृति की नई सोच)

उत्तरआधुनिकता के परचम को लेकर चलने वाले ल्योतार आदि सातवें दशक के प्रारम्भ में जब अपने अर्द्धत्रात्स्कीवादी आग्रहों-दुराग्रहों में उलझे हुए थे तभी जर्मनी के हांस माग्नुस एंत्सेसबर्गर ने आधुनिकतावाद के समापन की आवश्यकता महसूस कर ली थी। अपने एक लेख में उसकी व्याख्या प्रस्तुत की थी। आधुनिकता से आगे के विचार उनकी कविता में स्पष्ट हैं—कैसे जान सकते हो तुम कि आँख़ हरकत में है और तस्वीर ठहरी हुई/या तस्वीर हरकत में है और आँख़ ठहरी हुई/जो बात पक्की है वह यह कि गायब हुई चीज़ गायब नहीं हुई और मौजूद चीज़ मौजूद नहीं है।''

फूकूयामा के अनुसार ''तीसरी दुनिया में मध्यवर्ग के लोगों की संख्या निरन्तर बढ़ रही है जो अन्ततः ग्लोबल समाज में विलीन हो जाएगा। और इस नए युग में संघर्ष समाप्त हो जाएँगे। संस्कृति और मूल्य एक समान एवं वैश्विक हो जाएँगे। भविष्य का समाज 'उत्तर मानव' होगा क्योंकि भविष्य में विज्ञान और प्रौद्योगिकी का वर्चस्व स्थापित होगा।''

भविष्यवाणियों के सम्बन्ध में आल्विन टाफलर की एक पंक्ति ही काफी है ''इस अर्थ में भविष्य को जाना नहीं जा सकता कोई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। जीवन सरियली अप्रत्याशित सम्भावनाओं से भरा पड़ा है। ''महत्त्वपूर्ण यह है कि (ब्रेख्त के शब्दों में) कलाकारवृन्द, तुम जो चाहे-अनचाहे/अपने आपको दर्शकों के फैसले के हवाले करते हो/ भविष्य में उतरो, ताकि जो दुनिया तुम दिखाओ/उसे भी दर्शकों के फैसले के हवाले कर सको।

दो बातें जिनकी ओर ध्यान देना आवश्यक है—एक, उत्तरआधुनिकतावाद को उत्तरसंरचनावाद का पर्याय समझना, जो सही नहीं। यद्यपि दोनों में गहरा सम्बन्ध है। दूसरा, विचारधारा तथा थियरी को गड्मड् करना। विचारधारा के अंत की घोषणा तो अर्थ सदी से अधिक समय से हो चुकी है। यह अलग बात है कि व्यवस्थित राजनीतिक विमर्श में इसको पुनर्जीवित करने के प्रयास किये जा रहे हैं, लेकिन अब थियरी के पतन की घोषणा भी कर दी गई है। थियरी का गहरा सम्बंध उत्तरआधुनिकता